ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-7* August- 2021
Innovation The Research Concept

आदिवासी सांगीतिक संस्कृति को संरक्षण की आवश्यकता

Tribal Musical Culture Needs Protection

Paper Submission: 10/08/2021, Date of Acceptance: 23/08/2021, Date of Publication: 24/08/2021

रौशन भारती
सह आचार्य
संगीत विभाग,
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय,कोटा
विश्वविद्यालय, कोटा,
राजस्थान, भारत

सारांश

इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानव का विकास शिक्षा के द्वारा ही संभव हो सका है। ऐसा माना भी जाता है कि बिना शिक्षा के मनुष्य बिना पूँछ वाले पशु के समान है। इसलिए समाज के प्रत्येक स्त्री और पुरुष को अनिवार्य रूप से शिक्षित होना चाहिए, क्योंकि समाजरूपी गाड़ी के दो पहिये स्त्री और पुरुष ही तो हैं। परन्तु शिक्षा और विकास की होड़ में समाज में पाश्चात्य संस्कृति को अत्यधिक अपना लिया है और पिछले कुछ दशकों में आदिवासी समुदायों तक भी शिक्षा के साथ-साथ पाश्चात्य संस्कृति ने अपनी पहुँच फैला कर आदिवासी सभ्यता और संस्कृति को क्षति पहुँचायी है। वर्तमान समय में आदिवासी समुदायों के सांस्कृतिक धरोहरों को संरक्षण प्रदान कर इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये जाने की आवश्यकता है।

History is witness to the fact that human development has been possible only through education. It is also believed that a man without education is like an animal without a tail. That is why every man and woman of the society must be educated, because the two wheels of the cart of society are men and women. But in the race of education and development, western culture has been adopted more in the society and in the last few decades, along with education, western culture has spread its reach to the tribal communities and has damaged the tribal civilization and culture. At present, important steps need to be taken in this direction by preserving the cultural heritage of tribal communities.

मुख्य शब्द: आदिवासी, शिक्षा, संस्कृति, संरक्षण, मंच, आयोजन

Keywords: Tribal, Education, Culture, Conservation, Forum, Event.

प्रस्तावना

भारतीय सभ्यता और संस्कृति अत्यन्त प्राचीन मानी गई है और इसके साक्ष्य पुरातात्विकों के द्वारा समय-समय पर शोध के माध्यम से पुष्टि कर प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। भारतीय विभिन्न संस्कृतियों के मेल-मिलाप एवं विकास के परिणामस्वरूप अतुलनीय है। समय एवं काल परिवर्तन के परिणामस्वरूप पाश्चात्य संस्कृतियों से अनेकों गुणों को हमने अपनाया और इसी क्रम में शिक्षा ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका इसके विकास में निभाई है। ब्रिटिश काल से पूर्व जो शिक्षा प्रणाली वैदिक भारत में व्याप्त थी, वहाँ से 21वीं सदी तक भी शिक्षा पर आधिपत्य केवल विशिष्ट वर्ग तक सीमित देखा जा सकता है। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा जो शिक्षा प्रणाली स्वतन्त्र भारत को प्राप्त हुई, उसके माध्यम से विगत् दशकों में अक्षरज्ञान की प्राप्ति और शिक्षा के माध्यम से रोजगार प्राप्ति का मार्ग सभ्य समाज के साथ-साथ आदिवासी समाज को भी समझ आया। चूंकि भारत के विभिन्न राज्यों में अनेकों आदिवासी समूह निवास करते हैं, इनमें राजस्थान में निवास करने वाले मीणा आदिवासी समुदाय सर्वाधिक जनसंख्या के साथ शिक्षित वर्ग के रूप में भी उभर कर सामने आया है। परन्तु इस आदिवासी समुदाय के सांगीतिक शैलियों के बारे में आज भी शोध की

आवश्यकता है। जनसंख्या की दृष्टि से राजस्थान में मीणा आदिवासियों का प्रथम स्थान है। साथ ही स्त्री-पुरुष साक्षरता दर भी इनकी सर्वाधिक है। प्राचीन समय में यह समुदाय शासक वर्ग में सम्मिलित था, परन्तु मुगल काल आते-आते इनसे शासन छीन लिया गया और मुख्य रूप से इनका दो वर्गों में बँटवारा हो गया। यह दोनों वर्ग अपने वर्गानुसार जमींदारी और चौकीदारी के कार्य में लिप्त हो गये। जमींदारी से तात्पर्य खेती करने वाले और पशुपालन करने वाले मीणा आदिवासी हैं और चौकीदारी से तात्पर्य शासकों की सुरक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने से माना जाता है। जैसे-जैसे प्राचीन शासन व्यवस्था समाप्त होती गई वैसे ही शिक्षा और विकास के पथ पर अग्रसर होते हुए इन्होंने रोजगार की प्राप्ति के लिए शहरों, महानगरों की ओर प्रस्थान करना प्रारम्भ किया। जिनको रोजगार मिला वे सभ्य समाज के साथ सम्मिलित होकर अपनी आदिवासी सभ्यता से दूर होने लगे, किन्तु पिछले कुछ वर्षों में इन मीणा आदिवासी समुदायों ने शिक्षा का उचित उपयोग कर अपनी संस्कृति के संरक्षण के लिए एवं प्रचार-प्रसार के लिए सोशल मीडिया आदि का रूख करना प्रारम्भ किया है, जिससे आदिवासी एकजुट रहें और अपनी संस्कृति से परिचित रहकर, जुड़ा भी रहे।

आदिवासी समुदायों का परिचायक लोक-संगीत

भारतीय संस्कृति हो या कोई भी संस्कृति, यदि किसी समाज या समुदाया अथवा किसी विशेष वर्ग को समझना है तो प्रारम्भ में उस समाज या समुदायों के लोक-संगीत के माध्यम से स्पष्टतः समझा जा सकता है। राजस्थान प्रदेश भौगोलिक रूप से विभिन्नता से परिपूर्ण है। जहाँ प्रकृति के अनुरूप ही मनुष्य के सामाजिक जीवन की संस्कृति का आंकलन किया जा सकता है। यह प्रदेश प्रमुखता से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। जिनमें एक भाग पहाड़ों, नदियों, झीलों आदि प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है तथा दूसरा भाग रेतीले धोरों की चुनरी ओढ़े नजर आता है। प्राकृतिक सौन्दर्य के अनुसार ही यहाँ आदिवासियों की प्राथमिक आवश्यकताओं के अनुरूप पूर्वी भाग जो कि पहाड़ों, नदियों आदि से सम्पन्न है, अधिकांशतः इन्हीं इलाकों में निवास करती देखी गई है। वहीं पश्चिमी भाग में दूर-दूर तक केवल रेतीले टीले दिखाई देते हैं। यहाँ के धरातलीय स्वरूप का प्रभाव इन मीणा आदिवासियों के संगीत पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। क्योंकि आज भी शिक्षित और विकसित होने की श्रेणी में आगे बढ़ने की ओर अग्रसर होते हुए भी अपनी परम्परा के अनुसार यह समुदाय समूहों में निवास करते देखे जा सकते हैं। आदिवासी समुदायों में अधिकांशतः सामुहिक स्वरूप में लोक-संस्कृति के दर्शन दिखाई पड़ते हैं। राजस्थान प्रदेश में मीणा आदिवासियों के लोक-संगीत से सम्बन्धित अनेकों शोध किये गये हैं और वर्तमान में भी किये जा रहे हैं। परन्तु इनकी संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल करने की आवश्यकता है, क्योंकि शिक्षित होकर यह रोजगार प्राप्ति के लिए शहरों, महानगरों की ओर प्रस्थान करने की दिशा में अग्रणी हैं और इसी आपाधापी में अपनी सांस्कृतिक धरोहर लोक-संगीत से दूर होने को मजबूर होते जा रहे हैं। इन्हें अपनी कला, संस्कृति, संगीत आदि विधाओं को प्रदर्शित करने के लिए मंचों की आवश्यकता है, जिससे कि इनके संगीत से सभ्य समाज का परिचय हो सके। साथ ही अनेकों शोध करने की दिशा में एवं संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये जा सके।

अध्ययन का उद्देश्य

राजस्थान के मीणा आदिवासियों का लोक-संगीत सामूहिक रूप में देखने को मिलता है और अनेकों ढाणियों में यह समुदाय फैला हुआ है, जिसको एकत्रित कर अध्ययन एवं शोध के माध्यम से संरक्षित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। जिससे भविष्य में भी शोध की आवश्यकता होने पर वर्तमान तथ्यों के आधार पर प्रामाणिक जानकारी प्राप्त हो सके। शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने के साथ ही लोक-संगीत एवं संस्कृति से मीणा आदिवासियों को जुड़े रहना अतिआवश्यक है। जो कि संक्रमण काल में कहीं धुमिल ना हो सके।

अध्ययन का क्षेत्र

प्रस्तुत शोध कार्य राजस्थान के मीणा आदिवासियों से सम्बन्धित है। इसके लिए मीणा बाहुल्य जिलों यथा सवाई माधोपुर, करौली, दौसा, जयपुर, अलवर, टोंक आदि के ग्रामीण क्षेत्रों का अध्ययन किया गया है। इन क्षेत्रों के अधिकांश इलाकों में पूरे गाँवों में ही सामूहिक संगीत की विविध गायन शैलियाँ देखने को मिलती है और सभ्य समाज से इनका परिचय तक नहीं हो पाया है।

निष्कर्ष

किसी भी विषय के अध्ययन के लिये विषय से सम्बन्धित पूर्व में किये गये अध्ययनों का उपयोग विशेष रहता है। अतः इस विषय से सम्बन्धित भी पूर्व में किये गये शोधों का अध्ययन किया गया। तत्पश्चात् मीणा बहुल क्षेत्रों को अध्ययन के लिये चिन्हित कर विषय विशेषज्ञों से मार्गदर्शन प्राप्त करके, मुख्य उद्देश्य को केन्द्र में रखकर सामग्री एकत्रित करने का कार्य किया गया है। मीणा आदिवासियों का अध्ययन करने से इन पर शिक्षा के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा गया। साथ ही सोशल मीडिया के माध्यम से इनकी लोक-संगीत की विभिन्न गायन/वादन की शैलियों को समझने का प्रयास किया जाना चाहिए। क्योंकि इनकी सांगीतिक शैलियों को संरक्षण प्रदान करने की दिशा में केन्द्रिय एवं राज्य सरकार के प्रमुख सांस्कृतिक विभागों को ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. *मीणा, अनिल कुमार, "राजस्थान के राजवंशी इतिहास में मूल निवासी आदिवासी" अध्याय द्वितीय, अरावली उद्घोश,*

जनवरी 2014, पृष्ठ संख्या 16-20

2. *देवी समला, "आदिवासी साहित्य और समाज" अरावली उद्घोश, जनवरी 2014, पृष्ठ संख्या 29-34*
3. *मीणा, प्रो. श्रवण कुमार, "यह कैसा विकास?" संपादकीय, अध्याय प्रथम, अरावली उद्घोष, अक्टूबर 2012, पृष्ठ संख्या 3-5*
4. *भानावत, महेन्द्र, "राजस्थान की लोक कलाएं" अध्याय पंचम, कला समय, पृष्ठ संख्या 17-49*
5. *लक्ष्मीकान्त, "लोककला कितनी कुलीन..... कितनी मलीन?" अध्याय दूसरा, कला समय, पृष्ठ संख्या 6-8*
6. *चकवाला, चन्दालाल, "आजादी के बाद भी आदिवासी उपेक्षित व पिछड़े क्यों हैं?", अरावली उद्घोश, अक्टूबर 2012, पृष्ठ संख्या 9-13*
7. *बिहारी, बजरंग, "आदिवासी समुदाय और सभ्य देश", अध्याय नौ, अलख प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या 64-74*
8. *मीणा, रमेशचन्द, "आदिवासी दस्तक (विचार, परम्परा और साहित्य)", अध्याय प्रथम-यह पुस्तक क्यों?, पृष्ठ संख्या 5-8*